जैन धर्म में वनस्पति संरक्षण

*डॉ. यशस्पति झा

आज के पर्यावरण में वनस्पतियों का संरक्षण महती आवश्यकता बन गया है। पर्यावरण संरक्षित रहेगा तो जीवन भी हरा भरा रहेगा इसलिए प्राचीन ऋषि यों ने पर्यावरण चेतना को अपनी वाणी से पुरजोर तरीके से कहा है। हमें समझने की आवश्यकता है पुरातन ग्रंथों को पलटा तो देखें कि मनुष्य के जीवन की अवधारणा ऋषि यों ने बहुत सुव्यवस्थित तरीके से कर रखी थी उसी के अनुसार जीवन जीने के लिए प्रेरणा देते थे, सीख देते थे

जैन धर्म में वनस्पति जगत् को अत्यधिक महत्व दिया गया है। उसने वनस्पतियों में देवत्व का नहीं अपितु जीवत्व का प्रतिपादन किया और उनके संरक्षण पर बल दिया। जैन आगमों में जीवों के छह प्रकार बताये गये हैं जो पर जीवनिकाय के रूप में प्रसिद्ध हैं। जीवों के प्रकार निम्न हैं-

1. पृथ्वीकायिक,
2. अप्कायिक,
3. तेजस्कायिक
4. वायुकायिक,
5. वनस्पतिकायिक,
6. जसकायिक।

विश्व में सर्वप्रथम जैन धर्म ने ही पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और वनस्पतियों को जीव कहा। अरिस्टोटल ने पौधों का अध्ययन किया पर उसमें सचेतनता स्वीकार नहीं की। आधुनिक युग में जगदीशचन्द्र बोस ने वनस्पतियों में सचेतनता को प्रतिपादित कर जैन धर्म की मान्यता को प्रमाणिक सिद्ध किया।

दशवैकालिक सूत्र में वनस्पतिकायिक को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है, जिसके अनुसार ऐसी वनस्पति जिसका बीज अग्रभाग पर होता है जैसे कोरंट का वृक्ष, जिसका बीज मूल भाग में होता है जैसे कंद आदि, जिसका बीज पर्व-गांठ में होता है जैसे बड़, पीपल आदि, बीज से उगने वाली वनस्पति जैसे चौबीस प्रकार के धान्य, बिना बीज के अपने

आप उत्पन्न होने वाली वनस्पति जैसे दूब अंकुर आदि, तृण लतादि ये सब वनस्पतिकायिक हैं। उनमें अनेक जीव हैं ये भिन्न-भिन्न सत्ता वाले हैं। शस्त्र परिज्ञा के अनुसार बीज सहित वनस्पति सचित्त कही गई है।'

प्रज्ञापना सूत्र में वनस्पतिकाय के स्वरूप को अत्यन्त सूक्ष्मता से प्रतिपादित किया गया है। प्रज्ञापना सूत्र के प्रथम प्रज्ञापना पद में वनस्पतिकाय के मूल में दो भेद किये गये हैं- 1. सूक्ष्म वनस्पतियाँ और 2. बादर वनस्पतियाँ। सूक्ष्म वनस्पतियाँ तो सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हैं, जो चक्षु आदि इन्द्रियों का विषय नहीं हैं मात्र वीतराग प्रभु के वचनों पर श्रद्धा व विश्वास का विषय हैं। बादर वनस्पतियों के पुनः दो भेद किए हैं-

1. प्रत्येक शरीरी वादर वनस्पतिकाय
2. साधारण शरीरी (अनन्तकाय) बादर वनस्पतिकाय ।

प्रत्येक शरीरी बादर वनस्पतिकाय: इसके मूल में बारहभेद कर पुनः इन बारह

1. भेदों के अनेक भेद-प्रभेद किए हैं। प्रत्येक शरीरी बादर वनस्पतिकाय उसे कहा गया है जहाँ एक शरीर अधिष्ठित एक ही जीव हो ।
2. साधारण शरीरी बादर वनस्पतिकाय: इसके भी अनेक भेद-प्रभेद किये गये हैं। साधारण शरीरी बादर वनस्पतिकाय उसे कहा गया है जहाँ एक शरीर अधिष्ठित अनन्त जीव होते हैं। एक शरीर आश्रित साधारण जीवों का आहार, प्राणापात, योग्य पुद्गल ग्रहण एवं श्वासोच्छ्व

एक साथ ही होता है। एक शरीर में अनन्त जीवों का कैसे होता है? समाधान आगम मनीषियों ने इस प्रकार दिया है कि अधि में प्राप्त लोहे का गोला सारा का सारा अग्निमय होजाता है वैसे ही गोद (जीवों का अक्षय कोश) रूप एक शरीर में अनजा परिमन समझ लेना चाहिए। एक, दो, तीन, संख्यात, असंख्य गोद जीवों का शरीर ग्राह्म नहीं है, अनन्त जीवों का पिण्डरूप शरीर ही चक्षु इन्द्रिय का विषय है।

वनस्पति की सजीवता अन्य स्थावर जीव निकायों की अपेक्षा बहुत स्पष्ट है। तीर्थंकर महावीर ने आत्मतुला के सिद्धान्त के आधार पर कहा कि जिस तरह मनुष्य जन्मता है, चैतन्ययुक्त है, ग्लान होता है, आहार लेता है, अनित्य है, अशाश्वत् है, घटाव बढ़ता है, विविध अवस्थाएँ अथवा विकार पाता है वैसे ही वनस्पति शरीर में भी यह सब पाया जाता है।

आधुनिक वनस्पति विज्ञान लगभग पाँच हजार वनस्पतियों का अध्ययन कर सका है जबकि जैन आगमों में वनस्पतियों की संख्या लाखों में स्वीकार की गयी है। वनस्पतियों में चेतना के अस्तित्व तथा उनकी विस्तृतता व उपयोगिता को स्वीकार कर जैन धर्म ने गम्भीरतापूर्वक उनके संरक्षण पर बल दिया है। जैन आगमों में गृहस्थ और मुनि को

वनस्पतिकायिक जीवों की हिंसा से विरत रहने के लिए निर्देश दिये गये हैं। गृहस्थ अणुव्रती होता है इसलिए उससे वह पूर्णतः निवृत्त नहीं रह सकता पर मुनि के लिए वनस्पति का समारम्भ (हिंसा) किसी भी स्थिति में विहित नहीं है। आचारांग में इस विषय पर विस्तार से चिन्तन किया गया है। जैन धर्म में बिना प्रयोजन वनस्पति के पत्ते, फल, फूल, डालियाँ तोड़ना आदि कार्य द्वारा स्थावर (एकेन्द्रिय) जीवों की हिंसा करना प्रमादचर्या नामक अनर्थदण्ड कहा गया है। ये क्रियाएँ व्यर्थ ही पापों का बंध कराती हैं अतः इनका त्याग अनर्थदण्ड व्रत कहलाता है।

सप्रतिष्ठित वनस्पति में अगठित जीवों का वास रहता है अतः जब तक कोई वनस्पति सप्रतिष्ठित या अनन्तकाय है तब तक उसका भक्षण नहीं करना चाहिए क्योंकि उसके भक्षण करने से अनन्त जीवों का घात होता है। पीपल, गूलर, पाकर, वट और काक उदुम्बरी के हरे फलों को जो खाता है वह त्रस अर्थात् चलते-फिरते हुए जन्तुओं का घात करता है क्योंकि उन फलों के अन्दर जन्तु पाये जाते हैं। जो उन्हें सुखाकर खाता है वह उनमें अति आसक्ति के कारण अपनी आत्मा के गुणों का घात करता है। पाक्षिक श्रावक हिंसा को छोड़ने के लिये सबसे पहले मद्य, मांस, मधु को और पंच उदुम्बर फलों को छोड़ देता है। पंच उदुम्बर फलों के त्याग को मूल गुण माना गया है।'

वनस्पतिकाय के स्वरूप को जानकर, दीक्षा धारण करके और संयम के स्वरूप को समझकर जो ऐसा निश्चय करता है कि मैं वनस्पतिकाय की भी हिंसा नहीं करता और हिंसा से पूरी तरह निवृत्त हो जाता है तथा निर्ग्रन्थ-प्रवचन में अनुरक्त रहता है, वही अनगार कहलाता है।"6 अनगार का अर्थ है जो वृक्षों को काटकर घर न बनावे।'

वनस्पति जगत् वस्तुतः संवेदना का आधार और प्राणवायु का घर है। शायद इसीलिए अगार की व्याख्या वृक्षों से जोड़ी गयी है।

वनस्पति के आश्रित द्रष्ट व अद्रष्ट अनेक प्रकार के जीव रहते हैं। आचारांग के अनुसार माना प्रकार के शस्त्रों से वनस्पति की हिंसा करने से अनेक प्रकार के प्राणियों की भी हिंसा होती हैं? भगवान् महावीर के अनुसार जो इस जीवन निर्वाह के लिए, यश, पूजा के लिए, जन्म मरण के दुःख से छूटने के लिये स्वयं वनस्पतिकाय के जीवों की हिंसा करता है, दूसरों से वनस्पतिकाय के जीवों की हिंसा करवाता है और वनस्पतिकाय के जीवों की हिंसा करने वाले की अनुमोदना करता है उसके लिए यह हिंसा अहितकर है और अबोधिकर है।" वनस्पतिकाय की हिंसा कर्म बन्ध का कारण है, मोह का कारण है, मृत्यु का कारण है और नरक का कारण है - "एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णिरए। इसीलिए मुनियों के संबंध में कहा गया है कि वीणा, भवन, फूल, फल, तूलिका आदि भोगोपभोग के उपकरण वनस्पति से ही मिलते हैं जो मुनि के लिए विहित नहीं है, इसलिए उसे रसास्वादी नहीं होना चाहिए।

वनस्पतियों के संरक्षण के संबंध में साधुओं को विशेष निर्देश जैन धर्म में दिये गये हैं। साधु घास- वृक्षादि को तथा किसी वृक्षादि के फल और जड़ को न काटे तथा नाना प्रकार के सचित्त बीजों को सेवन करने की मन से भी इच्छा न करे।" भिक्षु द्वारा प्रत्येक वनस्पतिकाय की विराधना होने पर मात्र लघु मासिक प्रायश्चित्त और साधारण (अनंत काय) की विराधना होने पर गुरु चौमासी प्रायश्चित्त का विधान है।

भगवान् महावीर ने श्रावक के लिए 15 कर्मादानों का निषेध किया है जिनमें वनकर्म एक मुख्य कर्मादान है। वन काटने को महारम्भ में गिना है। बीजों को और हरी वनस्पति को मर्दन करते हुए चलने वाले को पापश्रमण कहा गया है।"

वनस्पति जगत् का संरक्षण अहिंसा से ही सम्भव है। जैनाचार में अहिंसा का अर्थ अत्यन्त व्यापक है। उमास्वामी का प्रख्यात सूत्र "परस्परोपग्रहो जीवानाम् सह अस्तित्व एवं अहिंसा का प्रतिपादन करता है। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े आदि तथा पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा तथा वनस्पति के स्थावर जीवों के साथ एकता साधना ही अहिंसा की समुपासना है। विश्व में जो कुछ है उसे उसी तरह रहने देना, उसके साथ छेड़-छाड़ न करना अहिंसा है। विश्व की संरचना एक ऐसा परस्पराधारित तानाबाना है कि एक तार को छूने से पूरा ब्रह्माण्ड झनझना उठता है। ऐसी स्थिति में एक का वध करने से दूसरा जीव वंश स्वयं ही नष्ट हो जाता है

वनस्पतियों से ही पृथ्वी पर जैविक प्रक्रिया सम्भव है। जैविक संतुलन बनाए रखने के लिए वनस्पतियों का संरक्षण आवश्यक है। जैन आगम ग्रंथ के 'ज्ञाताधर्मकथा' में मन्द मणिकार अपनी पति का उपयोग उद्यान, नन्दनवन आदि के निर्माण में किया और के संरक्षण में योगदान दिया। चरित (2069-72) तथा धर्मशर्माभ्युदय (1.12, 49) आदि में वनवाटिकाओं तथा नदी के तीरों पर वृक्षारोपण का वर्णन मिलता है। पद्मपुराण में ""प्रतिष्ठा ते गमिष्यन्ति यैः वृक्षाः समारोपिताः ।" इसके अतिरिक्त धवला, मूलाचार, भगवती सूत्र, जीवाजीवाभिगमसूत्र, अंगविज्जा, प्रज्ञापना पण को प्रतिष्ठा का विषय कहा गया है -

आदि जैन ग्रन्थों में वनस्पतियों के संरक्षण के संबंध में चिन्तन किया गया है। इस प्रकार जैन धर्म और परम्परा ने न जाने कितनी वनस्पतियों को लप्त होने से बचाया है।

जीवन व पर्यावरण रक्षण में वनस्पतियाँ अत्यन्त सहायक ही नहीं अपितु आवश्यक भी हैं। वनस्पतियों से ही पृथ्वी पर जैविक प्रक्रिया सम्भव है, अतः जैविक संतुलन बनाए रखने के लिए वनस्पतियों का संरक्षण आवश्यक है। आवश्यकता इस बात की है कि हम जैन धर्म की क्रांतदृष्टि को युगीन संदर्भ में समझें।

*व्याख्याता
व्याकरण
राजकीय शास्त्री संस्कृत महाविद्यालय
अलवर (राज.)

संदर्भ :

1. चतुर्थ अध्याय
2. आचारांग सूत्र, 1.5.7, गोम्मटसार जीव गाथा, 186
3. सागार धर्मामृत, 2.13 वही, 2.2 3.
4. श्रावकाचार 14
5. तं णो करिस्सामि समुट्ठाए, मत्ता मइयं, अभयं विदित्ता तं जे जो करए, एसोवरए, एत्योवरए, एस अणगारेति पवच्चई। आचारांग सूत्र 1.5.1
6. अगैः कृतमगारं गृहमित्यर्थः नास्य अगारं विद्यत इत्यनगारः उत्तराध्ययन चूर्णि, पृष्ठ 261
7. जैन धर्म और पर्यावरण, पृष्ठ 152 8.
8. आचारांग सूत्र 1.5.4 9.
9. वही, 1.5.5, अन्यत्र द्रष्टव्य 1.5.9
10. वही, 156
11. निशीथ भाष्य, गाथा, 4.7.91-92 तणरुक्खं न छिंदिज्जा, फलं मूलं च कस्सई ।
12. आमगं विविहं बीयं, मणसा वि न पत्थए।। दशवैकालिक सूत्र 8.10
13. निशीथ सूत्र, चतुर्थ उद्देश्क सूत्र 31, 61 .
14. उत्तराध्ययन सूत्र 176
15. तत्वार्थसूत्र 5.21